21वीं सदी की हिन्दी कहानी साहित्य में स्त्री चरित्र का बदलता स्वरूप वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में

*डॉ. राजेश कुमार

यूं तो हमारी संस्कृति में 'वसुधैव कुटुम्बकम' वर्षों से रचा–बसा है पर जिस साज–सज्जा से वैश्वीकरण या भूमण्डलीकरण ने खुद को प्रस्तुत किया है उससे ही प्रभावित होकर भारतीय विज्ञापन मुखर हो बोल पड़े 'कर लो दुनिया मुट्ठी में'। कथा साहित्य, यात्रा वृत्तान्त, फिल्मों, विदेशी वस्तुओं के चलते न चलते विदेशी कब देश जैसा लगा पता ही न चला। कल तक नौकरी के लिए की जाने वाली विदेश यात्रा कब शॉपिंग और भ्रमण के रूप में जिन्दगी की आम चर्चा का विषय हो गई यह विभिन्न देशों के जनमानस को भी ज्ञात नहीं। तकनीकी क्रांति ने तो वर्षों से लोकप्रिय गीत – 'मेरे पिया गए रंगून किया है वहाँ से टेलीफून, कि तेरी याद सताती है' को जन सामान्य के जीवन में विभिन्न राग–रागिनियों के साथ उतार दिया और इस प्रकार हर प्रकार की दूरियाँ नजदीकियों में परिवर्तित हो गई और साथ ही बदलने लगी अपनी–अपनी कहानी संग लोगों की जिन्दगानी, पर क्या जिन्दगानियों में परिवर्तन सचमुच आ गया है अथवा परिवर्तन बाधित सा लगता है? नहीं, ऐसा कैसे सम्भव हो सकता है भला, कि एक तरफ हम भूमण्डलीकरण के निनाद के नित–प्रतिदिन नए रंग–ओ–अंदाज से रूबरू हो रहे हैं तथा दूसरी विभिन्न बाधाओं की भी अनवरत चर्चाएँ जारी हैं। शायद द्वंद्व ही विकास की सीढ़ी है और इसी दौर से भूमण्डलीकरण का प्राथमिक चरण गुजर रहा है।

विकासशील युग में समतल होती दुनिया में भौगोलिक सीमाएँ निःसंदेह टूट रही हैं बल्कि सांस्कृतिक मूल्य और निजी अभिव्यक्ति शैली ने विश्व में भाषा की अस्मिता को जिस प्रखर अन्दाज में पिछले कुछ वर्षों से एक सामयिक व महत्त्वपूर्ण विषय बनाया है उससे विश्व पटल पर भाषाएँ एक नई दीप्ती और महत्त्व के संग अपनी उमंग, तरंग की लय में अपने अस्तित्व आरोहण का मृदंग बजा रही है। यह सब पूर्व नियोजित कार्यप्रणाली का परिणाम नहीं है और वैसे भी अखिल विश्व स्तर पर अपनी–अपनी भाषा की साधना, आराधना और विश्व विजय की कामना की उर्जापूर्ण हलचलें गणेश जी को दूध पिलाने जैसी रहस्यमयी लोक चेतना नहीं हो सकती है। तो प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि भूमण्डलीकरण के परलीकरण में अपनी शरण में जिन भावी आवरणों को छिपाए भाषाएँ अपने–अपने तीर द्वारा अश्वमेघ यज्ञ में निमग्न हैं। वैश्वीकरण के इस दौर में हिन्दी कहानी की भी अपनी संघर्ष यात्रा अनवरत जारी है तथा इस संघर्ष के दौरान हिन्दी कहानी की अनेको छटाएँ बर्बस अपनी ओर खेंच लेने की कूबत पा बैठी हैं।

भूमण्डलीकरण के इस प्रारम्भिक दौर में निश्चित रूप से हिन्दी ने स्वयं को राष्ट्र की बिन्दी प्रमाणित करते हुए अपने डैनों को हनुमान की तरह विशाल रूप देने में सफलतापूर्वक प्रयत्न किया है और इसके विकास में कहानी विधा की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। 21वीं सदी की हिन्दी कहानी में नारी पात्रों ने जिस तरह से अपने आप को बदला है वह निश्चित रूप से प्रशंसा योग्य है। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ से स्त्री शिक्षा पर बल दिया जाने लगा था। 20वीं शताब्दी के अन्तिम चरण से स्त्री स्वातंत्र्य नामक एक शब्द उछला। जिसके कितने अच्छे और बुरे परिणाम आ

रहे हैं यह बताने की आवश्यकता नहीं है। वैदिक काल की गार्गी, मैत्री पौराणिक काल की अनुसूया, सीता जैसी स्त्रियों के चरित्र आज 21वीं सदी में कपोल कल्पनाएँ लगती हैं। दिन प्रतिदिन चरित्रों का बदलता स्वरूप सर्वाधिक हिन्दी कहानियों में दिखाई देता है। चाहे दृश्य विधा हो या पुस्तकें। स्त्री के प्रतिमान दिन प्रतिदिन बदलते जा रहे हैं। बेशक यह भी वैश्वीकरण का ही एक परिणाम है। जब हम अपनी संस्कृति और परम्पराओं से विमुख हो वैश्वीकरण के नाम पर पश्चिम का अंधानुकरण कर रहे हैं। प्रेमचन्द के नारी पात्र, यशपाल के नारी पात्र, अज्ञेय के नारी पात्रों के आते–आते अपने आप को बदल देते हैं। अज्ञेय के नदी के द्वीप के नारी पात्रों की शब्दों में लिपटी काम स्वातंत्र्य चित्रा मुद्गल के नारी पात्रों के आते–आते वस्त्रों के नाम को ही लपेटे दिखाई देती हैं। संजय विद्रोही की कहानी 'कॉकटेल' की पात्र रमा अपने आप को आधुनिक दिखाने की होड़ में एक के बाद एक पुरुषों से सम्बन्ध स्थापित करती है और जब उम्र उसका साथ छोड़ती है तब उसे अपनी परम्पराएँ और संस्कार याद आते हैं परन्तु तब तक बहुत देर हो चुकी होती है। संजय विद्रोही की ही एक और कहानी 'कभी यूं भी तो हो' की नारी पात्र प्रेरणा जीवन में खुशियाँ ढूँढने के लिए निकलती है और मिलता है कोठा। ये कुछ पात्र हैं जो उदाहरण के रूप में देखे जा सकते हैं। जो शायद स्त्री स्वातंत्र्य और वैश्वीकरण का गलत अर्थ लेकर अपमान की गहरी खाई में गिरती जाती हैं।

आज की सबसे सशक्त विधा मीडिया जिसके माध्यम से साहित्य समाज को परोसा जा रहा है वो कैसा साहित्य परोसा जा रहा है यह हम सब देख रहे हैं। कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण है तो निश्चित रूप से इस बुद्धू बक्से के माध्यम से समाज अपनी शक्ल हमें दिखा रहा है। दूरदर्शन पर जितने भी धारावाहिक प्रसारित हो रहे हैं यदि हम शोधपरक दृष्टि से उनके नारी पात्रों का विश्लेषण करें तो वे पात्र कहीं भी हमें अपने से नजर नहीं आते। अति कामुकता, फैशनपरता, ईर्ष्या, द्वेष, चालबाजियाँ जो कुछ दिखाई देता है वे हमारे देश की नारी के लक्षण तो नहीं हैं। हम सीता, सावित्री के स्वरूप को देखते–पूजते आए हैं। ऐसी स्थिति में जब बिलकुल उसका विपरीत दिखाई देता है तब वैश्वीकरण पर एक प्रश्नचिन्ह लग जाता है। हिन्दी कहानी में इस बदलाव का कारण समय की मांग हो सकता है परन्तु लेखक और पाठक दोनों की ही यह जिम्मेदारी बनती है कि वे अपनी परम्पराओं और संस्कारों को मद्देनजर रख अपने पात्र का सृजन करें। जिस स्त्री का धर्म कभी परिवार पालन हुआ करता था आज 21वीं शताब्दी की कहानी की नारी पात्र का धर्म धन हो गया है और धनार्जन हेतु वह सबसे सुगम सरल और सुन्दर साधन अपने शरीर को ही पाती है। जिसे वह अधिक से अधिक भुना लेना चाहती है। विनयकान्त की कहानी 'शर्मिली' की नायिका शर्मिली बचपन से भारतीय परम्पराओं में पली–बढ़ी माता–पिता के विश्वास को प्राप्त कर उच्च शिक्षा हेतु दिल्ली भेजी गई। भेजी क्या गई वो दिल्ली की हो गई। पिता द्वारा भेजे गए धन की कमी को उसने अपनी चमड़ी के सिक्के से पूरा किया। वह कहती है – 'जब मेरे पास इतना सुन्दर शरीर है जो अपने आप में सोने के सिक्कों की टकसाल से कम नहीं तो फिर मैं क्यों एक–एक टके को मोहताज हूँ। आज नहीं तो कल इसे जल के खाक तो हो ही जाना है फिर क्यों नहीं जितना अधिक से अधिक हो सके मैं इसका उपयोग करूँ।' कहानी पढ़ते हुए मन के किसी कोने से यह प्रश्न उठता है क्या यह वही शर्मिली है जो हमारे घर–परिवार में छुई–मुई सी अल्हड़–सी इठलाती घूमती है या कोई और। पिछले दिनों स्त्री के इस बदलते स्वरूप पर प्रश्नचिन्ह लगाती हुई एक फिल्म 'अंडर ट्रायल' देखने को मिली। जिसमें फिल्म की नायिका अपने पिता से कहती है – 'आप किस इज्जत की बात करते हैं शरीर की यह दो इंच की जगह इज्जत नहीं होती। नहाए–धोए और साफ। इज्जत होती है पैसा, बंगला, गाड़ी, हाई हील के सैंडिल, अच्छे कपड़े, महंगा मोबाइल। आपकी इस थोथी और बकवास इज्जत को लेकर मैं अपनी जिन्दगी बरबाद नहीं कर सकती।' देख कर मन को एक धक्का–सा लगा कि आखिर हमारे कहानीकार समाज को क्या देना चाहते हैं, समाज के नारी पात्रों को कहाँ पहुँचाना चाहते हैं जो बेटी शादी की बात चलते ही शरमा कर पर्दे की ओट में हो जाती थी आज वही बेटी अपने पिता के सामने अपने शरीर से कमाने की बात गर्व से कहती है। माँ, बहिन, बेटी के विभिन्न किरदारों में जीने वाली स्त्री 21वीं सदी की कहानी में जिस तरह से अपने

स्वरूप को बदलती नजर आ रही है उससे भविष्य का अन्दाजा सहज ही लगाया जा सकता है। जहाँ तक मैं समझता हूँ 21वीं सदी में निश्चित रूप से हम बहुत आगे बढ़ रहे हैं लेकिन यदि पीछे मुड़ कर देखें तो गहरी खाई है। जरा सा चूके और गए। विभा शर्मा की कहानी 'भूले बिसरे' की नायिका अपनी दादी को जब शहर घुमाने ले जाती है वहाँ की स्वच्छन्दता को देख दादी अपने और आज के जमाने को तौलने लगती है। तब शिखा दादी से एक ही बात कहती है – 'दादी अब पुरानी मान्यताओं के साथ न तो जीया जा सकता है और न ही आगे बढ़ा जा सकता है। यदि आगे बढ़ना है तो इन सभी पुरानी बौडम मान्यताओं को पीछे छोड़ना पड़ेगा।' हिन्दी कहानी में वैश्वीकरण का यह प्रभाव उसे कहाँ ले जाएगा यह कहना बहुत मुश्किल है परन्तु मैं यह अवश्य कहना चाहूँगा लेखक, पाठक, दर्शक यदि 21वीं सदी के साथ विकास करना चाहते हैं तो अपनी परम्पराओं को साथ लेकर चलें क्योंकि आगे हम सबके लिए और भी बहुत–सी चुनौतियाँ हैं जिसके समाधान के लिए हमें अपनी जुगलबन्दी को नया आयाम देना होगा। आइये, वैश्वीकरण के इस दौर में हम अपने हिन्दी साहित्य की लय और मधुरता को बनाए रखते हुए आगे बढ़ें।

***सह–आचार्य**
हिन्दी विभाग
राजकीय महाविद्यालय, उनियारा, टोंक